International Journal of Sanskrit Research 2022; 8(6): 36-41

International Journal of Sanskrit Research
अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(6): 36-41
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 22-08-2022
Accepted: 25-09-2022

संतोष कुमार द्विवेदी
शोधछात्र, संस्कृत विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्व विद्यालय, उदयपुर, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
संतोष कुमार द्विवेदी
शोधछात्र, संस्कृत विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्व विद्यालय, उदयपुर, राजस्थान, भारत

पुराणों में आर्थिक चिंतन के आयम

संतोष कुमार द्विवेदी

DOI: https://doi.org/10.22271/23947519.2022.v8.i6a.1905

सारांश
प्रस्तुत शोधपत्र में पुराणों में आर्थिक जीवन की विवेचना करने का प्रयास किया जा रहा है जिसके अर्न्तगत कृषि प्रक्रिया, पशुपालन, व्यापार एवं वाणिज्य, शिल्प एवं उद्योग, मुद्रा प्रणाली, माप-तौल की इकाईयों एवं कर व्यवस्था की समाजशास्त्रीय ढंग से विवेचना करने का प्रयास किया गया है।

कूटशब्द : पुराण, वार्ता, कृषि, पशुपालन, वाणिज्य, शिल्प, मुद्रा, कर, कोष

प्रस्तावना
अर्थ की दृष्टि से मानव जीवन का अध्ययन प्रस्तुत करते समय प्राचीन भारत में एक अलग से शास्त्र बन गया था, जिसे वार्ता शास्त्र कहते थे। पुराणों में भी भारतीय परम्परा में प्रसिद्ध चार शाखाओं आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति स्वीकार किया है। पुराणों के अनेक प्रसङ्ग में वार्ता का उल्लेख मिलता है, विष्णु पुराण में अर्थसम्बन्धित विद्या को वार्ता कहा गया है। प्रारम्भिक पुराणों में वार्ताशास्त्र का सम्बन्ध आर्थिक व्यवस्था से वताया गया है, जिससे समाज में सन्तुलन बना रहता हैं। पुराणों में समस्त आर्थिक विषय़ों को वार्ताशास्त्र के अन्तर्गत रखा गया है।

कृषि
पुराण में लोगों का आर्थिक जीवन विशेषकर कृषि पर निर्भर रहा है। पुराणों के अनुसार कृषि वार्ता का एक विशिष्ट अंग है।[1] वैदिक काल से ही भारत में कृषि का का महत्व था। उद्योग के रूप में कृषि आरम्भ से ही एक विशिष्ट विद्या स्वीकार की गई है। इसका स्पष्ट उल्लेख विष्णु पुराण में हैं।[2]
विष्णु पुराण के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि आरम्भ में कृषि का कोई क्रम न था।[3] विष्णु पुराण में उल्लेख है कि प्राचीन काल में मनुष्यों में स्वाभाविक तृप्ति थी।[4] विष्णु पुराण में कृषि के जन्मदाता के रूप में पृथु का उल्लेख है। विभिन्न उल्लेखों से ज्ञात

होता है कि राजा वेन के राज्यकाल तक पृथ्वी असमतल थी। पृथ्वी पर कहीं पर्वत-कन्दरायें थी और कहीं ऊँची नीची भूमि थी इस कारण पुर और ग्राम का कोई निश्चित विभाजन न था। पृथ्वी बिना जोते बोये ही धान्य पकाने वाली थी।[5] किन्तु जब लोगों का जीवन स्थिर निवास बाला हुआ और उन्हें जीविका की कठिनाई हुई तब पृथु ने पृथ्वी को कृषि योग्य समतल बनाया। तत्पश्चात् पृथु की प्रेरणा से कृतिम कृषि का आरम्भ हुआ। पृथु द्वारा कृषि आरम्भ का उल्लेख अन्य पुराणों में भी मिलता है। साधारणतया कथा के रूप में आये इन उल्लेखों में कृषि के प्रति एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण दिखलाई पड़ता है। इन उल्लेखों के आधार पर हम कृषि के दो वर्ग निर्धारित कर सकते हैं- प्राकृतिक कृषि और कृत्रिम कृषि । राजा द्वारा कृत्रिम कृषि को प्रश्रय दिये जाने का एक कारण यह भी है कि उसे प्रजा द्वारा उत्पादन का छठा हिस्सा प्राप्त होता था।

कृषि उपयोगी उपकरण

'हल'

विष्णुपुराण में कृषि के उपकरण के रूप में सीर हल और लाङ्गल शब्दों के उल्लेख है। कृषि के लिये भूमि कर्षण से नहीं है तथापि यदि इनके द्वारा अन्य किसी प्रयोजन से भूमि जोतने का उल्लेख है तो अवश्य ही इन उपकरणों के द्वारा कृषि के लिये भूमि जोतने का कार्य भी सम्पन्न किया जाता होगा। कृषि के लिए खोदी हुई भूमि के साथ धार्मिकता जुड़ी हुई थी। लङगल शब्द का उल्लेख विष्णु पुराण में शेषनाग के प्रसंग में आया है। यहाँ उन्हें लाङ्गल को धारण करने वाला कहा गया है। एक अन्य प्रसंग में हलघर (बलराम) द्वारा लाङ्गल उठाये जाने का उल्लेख है। बलराम हल को आयुध के रूप में धरण करते थे। सीर, हल और लाङ्गल के अतिरिक्त फाल शब्द का उल्लेख भी मिलता है। फाल शब्द का उल्लेख उस प्रसंग में आया है जहाँ कहा गया है कि पृथ्वी विना फाल से जोते ही धान्य उत्पन्न करने वाली थी। अतः फाल भी खेत जोतने का एक उपकरण था। इनके अतिरिक्त पुरणों में कृषि अन्य उपकरणों के रूप में यदा-कदा कुदाल, खनित्र,दात्र एवं परशु (कुठार) के उल्लेख प्राप्त होते हैं। ये क्रमशः भूमि की खुदाई फसलों की कटाई के लिये महत्वपूर्ण थे।

कृषि के उत्पाद

विष्णु वायु में औषधि शब्द का प्रयोग अन्न के लिये हुआ है। कृषिकार्य के फलस्वरूप उत्पन्न विविध अन्नों के विषय में पद्मपुराण और ब्रह्मण्ड पुराणों में उल्लेख है - कि पृथु के द्वारा पृथ्वी को समतल बनाये जाने पर दो प्रकार के अन्नों की उत्पत्ति हुई, जिन्हें ग्राम्य एवं वन्य कहा गया है।

कृषि में बाधायें

कृषि को सम्पात्र बनाने के लिये हर संभव प्रयास किये जाते थे, किन्तु देश को कभी-कभी अतिवृष्टि, अनावृष्टि का समाना करना पड़ता था जिससे समस्त औषधियाँ (अन्न) नष्ट हो जाती थी। विष्णु पुराण में कलयुग के प्रसंग अनावृष्टि का उल्लेख है। पुराणों से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में कुछ प्रदेशों में वारह-वारह वर्षो तक वर्षा नहीं हुई। उदाहरणार्थ विष्णु पुराण में राजा शान्तनु के राज्य का वर्णन है जब वारह वर्ष तक वर्षा नहीं हुई थी।

पशुपालन

भारतीय समाज की आर्थिक सुदृढ़ता के पीछे कृषि के साथ-साथ पशुपालन भी दूसरा स्तम्भ रहा है। पुराण में जीव-जगत की उत्पत्ति के अन्तर्गत पशुओं की उत्पत्ति का उल्लेख है। पुराणों में पशुओं के ऐतिहासिक विकास का विवरण अत्यन्त रोचक प्रतीत होता है। विष्णु पुराण का उल्लेख है कि पूर्वकाल में जब महर्षियों ने जब पृथु को राज्यपद पर अभिषिक्त किया तब प्रजापति ब्रह्मा ने सम्पूर्ण जीव जगत में मुख्य-मुख्य को राजा बनाया। पशुओं में गजराज का स्वामी ऐरावत, घोड़ों का स्वामी उच्चैःश्रवा, गौओं का स्वामी वृषभ, समस्त मृगों (वन्य पशुओं) का स्वामी सिंह एवं मृगगण का स्वामी व्याघ्र (बाघ) को बनाया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय तक पशुओं की उपयोगिता के अनुकूल उनका विभाजन तथा इस वर्ग में प्रमुख पशुओं का निर्धारण होना आरम्भ हो गया था जिसमें सर्वथा विशिष्ट गुणों से

सम्पन्न पशु या व्यक्ति उस समुदाय का प्रमुख मान लिया जाता था।[6]

प्रारम्भिक स्तर में पशुपालन कृषि का ही एक अंग था और विशेष दृष्टि से कृषि में काम आने वाले पशुओं का ही विशेष महत्व था। पुराणों में वार्ता के तीन विभागों में से पशुपालन एक कहा गया है।[7] पशुपालन का आरम्भ भी पृथु के प्रसंग में ही देखने को मिलता है। यद्यपि पशुसंस्था का विकास मानवीय सृष्टि के साथ ही क्रम से होता चला आ रहा है और अन्य जीवों के दैविक उत्पत्ति के सिद्धान्त के अनुकूल ही पशुओं को भी प्रजापति के विभिन्न अंगों से उत्पन्न माना गया है। तथापि इनके क्रमिक ऐतिहासिक विकास की कल्पना पृथु के समय से ही पुराणकार उल्लिखित करते है, जहाँ से क्रमबद्ध रूप में मानवीय इतिहास का आरम्भ होता है। ऐसी स्थिति में पशुपालन सम्बन्धी एवं विचार पशु जगत की प्रारम्भिक स्थिति का बोधित करते है, जिस समय पशु संस्था कृषि से आबद्ध थी। यहाँ पशुपालने वालों का एक अलग क्षेत्र बनता दिखाई पड़ता है जो अपने आपको कृषि एवं वाणिज्य वृत्ति से अलग होकर पशुपालन के माध्यम से अपनी जीवन वृत्ति को स्थिर करते हुए दिखाई पड़ते है। यहाँ यह कहा गया है कि कृषि किसानों की वाणिज्य व्यापारियों की ओर गोपालन ही हम गोपों की उत्तम वृत्ति है। अतः प्रतीत होता है कि विष्णु पुराण का यह वर्णन प्राचीन है। जिसका प्रभाव भागवत पुराण पर है।[8]

व्यापार एवं वाणिज्य

पुराणों में कृषि, पशुपालन के अतिरिक्त आर्थिक संगठन की तीसरी महत्वपूर्ण ईकाई व्यापार और वाणिज्य है यद्यपि पुराणों में व्यापार सम्बन्धी विशेष उद्धरणों का मिलना कठिन है, क्योंकि पुराणों की प्रवृत्ति इन सब वस्तुओं के संग्रह भिन्न रही है, तथापि यत्र-तत्र जो भी उल्लेख प्राप्त होते हैं। उनके आधार पर हम तत्कालीन व्यापार के विषय में अधोलिखित सूचना प्राप्त करते हैं पुराणों में वाणिज्य को सत्यनृत की जीविका कहा गया है। सत्यनृत का तात्पर्य व्यापार एवं वणिज्य से ही है।

पुराणों से ज्ञात होता है कि आरम्भ में व्यापार की कोई निश्चित प्रक्रिया नहीं थी । वैन्य पुत्र पृथु के शासनारूढ़ होने के साथ-साथ जब समाज में अनेक बुराइयों का तिरोभाव हुआ तब वृत्तियों के साथ व्यापार का भी सूत्रपात हुआ। भागवत पुराण का उल्लेख है कि आपस में क्रय-विक्रय आदि व्यापार करने पर थोड़े से धन की प्रप्ति हो जाती थी। मत्स्य और वायु पुराणों में द्वापर युग का उल्लेख करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि इस युग में लोगों में लोभ की भावना आ गई थी तथा धर्म की भावना लुप्त हो गई थी. फलस्वरूप लोग अपने मूलतत्व को भूल गये और लोभ के वशीभूत होकर अपने-अपने व्यापार कर्म में लग गये।

आन्तरिक व्यापार

पुराणों से ज्ञात होता है कि व्यापार के लिये दूर-दूर तक यात्राएं होती थी। गरुड़ पुराण के अनुसार लाभ-वृद्धि को ध्यान में रखकर देश में विभिन्न प्रकार के व्यापार होते थे। व्यापरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नगर व्यापर के मुख्य केन्द्र बन जाते थे। इनके विषय की थोड़ी बहुत जानकरी पुराण देते हैं। गरुड़ पुराण में वैदिशनगर (विदिश, मध्य प्रदेश) और महोदयपुर (कन्नौज) का उल्लेख है, जो व्यापार की दृष्टि से महत्वपूर्ण नगर थे। इन नगरों की समृद्धि और वैश्य जाति की उन्नति के कारण ही वैदिशनगर के पास की बस्ती वैश्यनगर (वेसन नगर) कहलाती थी।

विदेशी व्यापार

यद्यपि पुराणों में विदेशी व्यापार सम्बन्धी उद्धरणों का कम ही उल्लेख प्राप्त होता है फिर भी उनमें कुछ ऐसे निश्चित प्रसंग उल्लिखित है: जिनके आधार पर हम तत्कालीन वैदेशिक व्यापार का एक स्पष्ट चित्र खींच सकते है। यह व्यापार जल और स्थल दोनों मार्गो से होता था। जैन हरिवंश पुराण में चारूदत्त के द्वारा विदेशी व्यापार किये जाने का उल्लेख मिलता है। जो समुद्र के द्वारा सुवर्णद्वीप पहुँचा था। इसी बीच उसने ऐरावती नदी और गिरिकूट पर्वत को पार किया था। विदेशों से प्रायः बहुमूल्य वस्तुओं का व्यापार होता था। आदि पुराण में व्यापार के लिये विदेश यात्राओं का उल्लेख है। स्कन्द पुराण में विदेश परिस्थित शब्द का उल्लेख मिलता है। गुरुड़ पुराण में भी विदेशगमन का उल्लेख मिलता है। व्यापार के लिये दूर-दूर तक यात्रायें होती थी नदी और

समुद्र को पार करने के लिए नावों का उपयोग किया जाता था।

शिल्प एवं उद्योग

आर्थिक संगठन की एक महत्वपूर्ण इकाई शिल्प एवं उद्योग का उल्लेख हमें विभिन्न पुराणों के अध्ययन से आंशिक रूप में प्राप्त होता है इन उल्लेखों के आधार पर पौराणिक शिल्प एवं उद्योग की एक सूक्ष्म रूपरेखा तैयार की जा सकती है।

पुराणों में उद्योग धन्धों के जितने भी स्थल मिले हैं वे प्रायः शिल्प शब्द का उल्लेख करते हैं। वायु और विष्णु पुराण में स्पष्ट उल्लेख है कि शिल्प का सम्बन्ध दोनों हाथों से है।[9] जिससे हस्तकला का समावेश निश्चय ही शिल्प के अन्तर्गत प्रतीत होता है। दोनों हाथों का सहज कर्तव्य शिल्प को मानना इस बात का द्योतक है कि इसे आर्थिक संघटन के अभिन्न अंग के रूप में ग्रहण किया गया था।[10] पुराणों में शिल्प के महत्व की सूचना मिलती है। उद्योग धन्धों के विकास में सहायक होने के कारण आर्थिक संगठन में शिल्पियों का विशेष स्थान था।[11]

पुराणों में उद्योग धन्धों से सम्बनिधत जितने भी उल्लेख मिलते हैं इतने सूक्ष्म एवं प्रासंगिक है कि इनकी निश्चित संख्या एवं विस्तृत व्याख्या नहीं की जा सकती । मत्स्य पुराण में आभूषण निर्माण, मूर्ति निर्माण, गृह निर्माण, भाण्ड निर्माण पशुपालन एवं शिकार आदि उद्योगों के उल्लेख प्राप्त होते हैं।[12] पुराणों में जिन उद्योगों के विषय में थोड़ी अधिक सामग्री मिली है, उन्हें अलग-अलग विवेचित किया जा रहा है।

भाण्ड निर्माण

मिट्टी से बनाया जाने वाला भाण्ड निर्माण एक प्रमुख शिल्प उद्योग था। भाण्ड निर्माताओं को कुलाल अथवा चक्रोपजीविन कहा जाता था,[13] क्योकि ये चक्र द्वारा ही भाण्डों का निर्माण कर अपनी जीविका चलाते थे।[14] प्रचलित भाषा में ये कुम्भकार कहे जाते थे। भाण्ड निर्माण का उल्लेख वायु पुराण में मिलता है।

तैल निर्माण

पुराणों में तैल का निर्माण भी एक महत्वपूर्ण उद्योग था। तेल का उल्लेख अनेक पुराणों में है।[15] शिल्प एवं उद्योग के रूप में तेल निकालने बाले को तेली को या तैलिक कहा गया है।[16] पद्मपुराण में इसके लिये चक्रिन शब्द प्रयुक्त है।[17]

आभूषण निर्माण

आभूषण निर्माण एक प्रमुख शिल्प उद्योग था। आभूषण निर्माण का उल्लेख अनेक पुराणों में मिलता है। वायु, मत्स्य, विष्णु और ब्रह्ममण पुराणों में आभूषणों का सम्बन्ध प्रजापति विश्वकर्मा से स्थापित किया गया है।[18] विष्णु पुराण के अनुसार जब लक्ष्मी क्षीर सागर से बाहर निकली तब विश्वकर्मा ने उन्हें विभिन्न आभूषण पहनायें।[19] उल्लेखनीय है कि आभूषणों के प्रसंग प्रायः देवी-देवताओं के अलंकर के रूप में आये है। परवर्ती पुराणों में इन विशेष आभूषणों का उल्लेख कम प्राप्त होता है। इनमें मणि एवं रत्नों के उल्लेख विशिष्ट हैं।[20]

मालाकार

पुराणों में स्वर्ण और रत्नों के अतिरिक्त पुष्पों एवं पल्लवों से भी आभूषण बनाये जाने के उल्लेख है। ये आभूषण माली द्वारा बनाये जाते थे। विष्णु पुराण में उल्लेख है कि कृष्ण और बलराम को उनकी रूचि के अनुसार पुष्प आदि देकर माली एवं मालिनों ने उनसे वरदान प्राप्त किये थे।[21] माली पुष्पों एवं पल्लवों से विविध प्रकार के आभूषण बनाता था। माली के इस कार्य को एक उद्योग के रूप में प्रतिष्ठित किया जा सकता है।

वस्त्र निर्माण

पुराणों से ज्ञात होता है कि वस्त्र निर्माण एक प्रमुख उद्योग था, जैसा कि पौराणिक प्रसंगों के विवेचन से ज्ञात होता है। वृक्षवल्कल, ऊन, रेशम और कपास वस्त्र निर्माण के प्रमुख प्रकार थे। ऊनी वस्त्रों के निर्माण का प्रचलन पुराणों के उल्लेखों से लगाया जा सकता है। ऊन के लिये उर्णा. तथा ऊनी वस्त्रों के लिए और्ण का उल्लेख है।[22]

पुराणों में रेशमी वस्त्रों के लिये क्षोम [23] और कौशेय [24] शब्दों का उल्लेख है। दोनों ही रेशम से बनाये जाते थे। शब्द भेद के साथ क्षौभ और कौशेय रेशमी वस्त्र प्रतीत होता है। पुराणों में कपास अर्थात् से बने सूती वस्त्रों का

उल्लेख है।[25] कपास से बने वस्त्र को यज्ञ में दान के लिये पवित्र माना गया है। कालिका पुराण में कपास का उल्लेख है जिससे सूती वस्त्र बनाये जाते थे।

चर्म उद्योग

पुराणों में चर्म सम्बन्धी अनेक उल्लेख आये हैं। इनके आधार पर चर्म उद्योग का प्रचलन ज्ञात होता है चमड़े से सम्बन्धित कार्य करने वाले को चर्मकार कहा गया है।[26]

धातु उद्योग

प्राचीन भारत में धातुओं का विकास बहुत पहले से ही हो चुका है। यजुर्वेद के शतरुद्रि प्रकरण में लोहा, शीशा आदि विभिन्न धातुओं का उल्लेख है। पुराणों के काल में बहुत सी धातुओं का प्रचलन था, जिनमें स्वर्ण, चाँदी, ताब कांसा, लोहा, टिन आदि धातुओं का उल्लेख मिलता है।[27]

शिल्प स्थापत्य

शिल्प स्थापत्य के अन्तर्गत स्थापत्य कला एक महत्वपूर्ण था। निवास के लिए भवनों की आवश्यकता मनुष्यों को त्रेतायुग में हुई।[28] वास्तु विद्या में प्रवीण, परिश्रमी, हस्तलाघव दिखने वाला, दीर्घदर्शी तथा शर व्यक्ति को ही स्थपति के पद नियुक्त करना चाहिये।[29] स्थापित भवनु दुर्ग मूर्ति मन्दिर आदि के निर्माण कार्यो का प्रमुख होता था। इसी की अध्यक्षता में सभी स्थापत्य कार्य होते थे।

रत्न सागर

पुराणों में रत्नशास्त्र एवं मणिशास्त्र का उल्लेख मिलता है। विष्णु पुराण में हरि के कौस्तुभ मणि का उल्लेख है।[30] विष्णु, वायु, और ब्रह्माण्ड पुराणों में स्यमन्तक मणि का उल्लेख है।[31]

मुद्रा प्रणाली एवं माप तौल की इकाइयाँ

समाज के आर्थिक जीवन में मुद्रा का महत्वपूर्ण स्थान होता था। आर्थिक संगठन का यह ऐसा पहलू है जिसके माध्यम से मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति सरलता से करता है। आर्थिक जीवन का आधार है क्रय-विक्रय इसके के लिए सर्वप्रथम आवश्यकता होती है एक ऐसे माध्यम की जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी अभीष्ट वस्तु ले सके और दुसरों को अपनी अतिरिक्त वस्तुयें बेच सके। अतः सिक्का एक ऐसा माध्यम है जो व्यक्तियों एवं समूहों के बीच इस प्रकार का आदान-प्रदान का सम्बन्ध बनाता है।

निष्क

पुराणों में सिक्कों के रूप में निष्क का उल्लेख सबसे महत्वपूर्ण है। वायु ब्रह्माण्ड, विष्णु पुराणों में निष्क के उल्लेख मिलते हैं। विष्णु पुराण में निष्क का उल्लेख द्यूत क्रीड़ा के प्रसंग में मिलता है। यहाँ कहा गया है कि रूक्मी ने द्यूतक्रीड़ा में वलभद्र को क्रमशः सहस्त्र और दस निस्कों से हराया।[32]

सुवर्ण

विष्णु पुराण में यह उल्लेख मिलता है कि सुवर्ण चुराने वाले सूकर नरक में गिरते है।[33] गरुड़ पुराण में भी सुवर्ण के मुद्रा परक रूप का उल्लेख मिलता है।[34] मत्स्य पुराण में दान की प्रतिज्ञा करके भी दान न करने वाले पर एक सुवर्ण दण्ड का उल्लेख है।[35] पुराणों में निष्क और सुवर्ण आदि तौल के रूप में भी उल्लिखित हैं।

कार्षापण

मनु ने तांबे के काचिकवण अथवा कार्षापण का उल्लेख किया है जो जाँदी के धरण अथवा पुराण के बराबर के तौल का अर्थात् 32 रत्ती का होता था। कार्षापण शब्द का प्रयोग पुराणों में कई स्थानो पर आया है। अग्नि पुराण में तांबे से निर्मित सिक्के को कार्षापण नाम से अभिहित किया गया है।[36]

पण

पुराणों में कार्षापण के अतिरिक्त पण शब्द का उल्लेख भी सिक्के के रूप में मिलता है। कार्षापण की भांति पण को भी अपराध के उपरान्त दण्ड के रूप में लिया जाता था। मत्स्य पुराण के अनुसार खराब बीज को अच्छा बीज कहकर या अच्छे बीज में खराब बीज मिलाकर बेचने वाले व्यक्ति को दो सौपण दण्ड के रूप में देना पड़ता था।[37]

कपर्दिका

इनके अतिरिक्त मत्स्य पुराण में कपर्दिका का भी उल्लेख आता है।[38] जो न तो सिक्का था न कोई भारमान, फिर भी दैनिक व्यापार में इसका प्रयोग विनियम के माध्यम के रूप में होता था।

कर-व्यवस्था

कोष को समृद्ध रखने का एक प्रमुख साधन कर है कर का सामान्य अर्थ लगान, शुल्क या भेंट है।[39] जो राजा द्वारा प्रजा से लिया जाने वाला आय का एक निश्चित अंश होता है।[40] पुराणों में ऐसे अनेक उल्लेख मिलते हैं। जिनके अनुसार प्रजा अपनी आय का एक निश्चित अंश राजा को प्रदान करती थी। राजा प्रजा की रक्षा, यज्ञ, दान एवं अपातकाल में सुरक्षा हेतु कर ग्रहण करता था।

बलि

प्राचीन काल में कर के लिये बलि शब्द का प्रयोग भी होता रहा है।[41] यही प्रक्रिया पुराणों में भी प्राप्त होती है।[42] मत्स्य पुराण का उल्लेख है कि राजा राष्ट्र में अपनी प्रजा से वर्ष में एक बार बलि ग्रहण करे उक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि कर के अर्थ में बलि शब्द का प्रयोग पुराणकारों ने प्राचीन वैदिक परम्परा से लिया है।

पुराणों के उल्लेख इस बात के द्योतक हैं कि तत्कालीन समाज में प्रजा से अनेक प्रकार के कर लिये जाते थे, जिनकी मात्रा निश्चित रहती थी, किन्तु समय और परिस्थिति के अनुसार उसमें फेर-बदल भी हो सकती थी।

वाणिज्य कर (शुल्क)

अन्य करों के अतिरिक्त वाणिज्य एवं उद्योग पर भी कर लगता था।[43] इसे शुल्क के नाम से जाना जाता था। व्यापारियों को ग्राम एवं नगर में आने वाली वस्तुओं पर चुंगी देनी पड़ती थी। यह कर सड़कों की मरम्मत और सुरक्षा हेतु लिया जाता था।[44]

कोष

'कोष राज्यकर से प्राप्त धन राशि का भण्डार है। राजा की समृद्धि और स्थायित्व उसकी आर्थिक स्थिति की सुदृढ़ता पर ही निर्भर करती है।[45] कोष का अधिकारी कोषाध्यक्ष होता था, जो धार्मिक कुलशीलवान और सद्गुणों से युक्त होता था।[46] अर्थशास्त्र में कोषाध्यक्ष से अपेक्षा की जानी थी कि उसे राज्य में होने वाली आय की समस्त गतिविधियों की जानकारी रहे। यदि उससे सौ वर्ष पीछे की आय का लेखा-जोखा पूछा जाय तो वह तत्काल उसकी जानकारी दे।[47]

निष्कर्ष

यद्यपि पुराणों में अर्थिक जीवन के पक्ष का एक स्थान पर क्रमिक रूप से निरूपण नहीं हुआ है और जो इनके स्वभाव के अनुकूल भी नहीं है, क्योंकि पुराणों का वर्ण्य-विषय जीवन का आर्थिक पक्ष नहीं था, फिर भी जो भी बातें इनसे प्राप्त हुई हैं वे अपने आप में महत्वपूर्ण है, क्योंकि उनका सम्बन्ध मानव के प्राचीन इतिहास से है। -

सन्दर्भ

1. वायु पुराण **1.100**, ब्रह्माण्ड पुराण **1.1.92**
2. विष्णु. पु. **5.10.28**
3. ततो भूमेश्च संयोगादादोष धयस्तास्तदाभवन्।अफलाकृष्टाश्चानुप्राप्ता ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश॥ विष्णु. पु. **4.9.159**
4. न हि पूर्व विसर्गे वै विषमे पृथिवीतले। प्रविभागः पुराणं ग्रामानां वा पुराभावत्। विष्णु. पु. **1.13.83**
5. विष्णु. पु. **2.13.46**
6. विष्णु. पु. **1.22.1.**
7. विष्णु. पु. **1.22.2-8**
8. कृषिर्वाणिज्या तद्वच्च तृतीयं पशुपलनम्। विद्या ह्येका महाभागा वर्ता वृत्तित्रयाश्रया॥ विष्णु.पु. **5.10.28**
9. विष्णु. पु. **5.10.29**
10. प्रतीकारमिमं कत्वा शीतादेस्ताः प्रजाः पुनः । वार्तोपायं ततश्चक्रुर्हस्तसिद्धिं च कर्मजाम् ॥ विष्णु.पु **1.6.20**॥
11. पायूपस्थौ करौ पादौ वाक्च मैत्रेय पञ्चमी। विसर्गशिल्पगत्युक्ति कर्म तेषां च कथ्यते॥ विष्णु. पु. **1.2.49**॥

12. राय, सिद्धेश्वरी नारायण; पौराणिक धर्म एवं समाज। पृ.377
13. कान्तावा. एस. जी. कल्चारल हिस्ट्री फ्रम दी मत्स्यपुराण। पृ. 260
14. विष्णु. पु. 6/5/48, पद्म. पु. 3/56/19
15. अग्नि.पु. 168/6
16. पद्म.पु. 11/91/235, भविष्य. पु. 1/181/16
17. शब्द. कल्प. का. 4. पृ. 350
18. वायु. पु. 66.28, मत्स्य पु. 5/28, ब्रह्मा. पु. 3.3.29,
19. विष्णु. पु. 1/9/104
20. अग्नि. पु. 246/1
21. विष्णु. पु. 5/19/17
22. अग्नि. पु. 169/133, मत्स्य. पु. 227/48
23. वायु. पु. 80/37, ब्रह्मा.पु. 31/16/35
24. आश्वलायन. श्रो.सू. 2/3/41/17
25. कालिका. पु. 691/91
26. स्कन्ध. पु. 6/27/49
27. अग्नि. पु. 257/29
28. मत्स्य. पु. 252/2
29. मत्स्य. पु. 252/39
30. विष्णु. पु. 1/2/68
31. विष्णु. पु. 41/3/19, वायु. पु. 96/25
32. विष्णु. पु. 5/28/13-14
33. विष्णु. पु. 2/6/9
34. गरुड़. पु. 2/6/39
35. मत्स्य. पु.227/8-9
36. अग्नि. पु. 227. 4
37. मनु. स्मृ. 8/136, मत्स्य. पु. 119/11
38. आप्टे.वा.शि. (कोष) पृ. 248
39. शब्द. कल्प. का. 2. पृ. 29
40. शब्द. कल्प. का. 2. पृ. 29
41. मार्क. पु.18/6, ब्रह्मा. पु. 2/31/48
42. मनु. स्मृ. 8/308
43. मत्स्य. पु.2/5/56
44. मनु. स्मृ. 7/80
45. शब्द. कल्प. का. 2. पृ. 29
46. अल्तेकर, ए, एस, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति – पृ 221
47. गरुड. पु. 1/112/4